प्रस्तावना

बदलते समय के साथ खेल का स्वरूप भी बदल गया है। खेल केवल समय व्यतीत करने का साधन नहीं बल्कि गंभीर विषय हो गया है। 'पढ़ोगे लिखोगे बनोगे नवाब और खेलेगो कूदोगे होगे खराब' वाली कहावत अब पुरानी हो चुकी है। इसने लोगों का जीवन ही नहीं देशों की पहचान तक बदल डाली है। जो चीज जीवन जीने के संघर्ष से शुरू हुई वह आगे चलकर केंद्रित होती गई और उसमें धीरे-धीरे नियम बनने लगे। अब वह हमारे सामने खेल के रूप में हैं। हमारी पौराणिक कथाओं में भी खेल का जिक्र मिलता है। महाभारत की पूरी बिसात ही एक खेल के आधार पर टिकी है।

आधुनिक खेलों को उस समय एक नया मोड़ मिला जब 1896 में ओलंपिक खेल शुरू हुए। यहां यह बात ध्यान देने वाली है कि "मीडिया के आभाव में ओलंपिक खेल भी क्षेत्रीय घटना रह जाती।" 1920 में भारत ने अपनी आधिकारिक टीम इन खेलों में भेजी (1900 ओलंपिक में नार्मन प्रिचर्ड ने भाग लिया था लेकिन उस पर विवाद है)। इसके बाद ही इस बात की जरूरत महसूस हुई कि देश में खेलों के लिए बुनियादी ढ़ाचा तैयार करने के लिए कोई प्रतियोगिता होनी चाहिए। इसी कारण पहले राष्ट्रीय खेल जिसका नाम उस समय भारतीय ओलंपिक खेल रखा गया 1924 में हुए। 1940 के बाद इसका नाम राष्ट्रीय खेल हो गया। हर दूसरे साल होने वाले इन खेलों में पूरा देश भाग लेता था। जैसे-जैसे आर्थिक व औद्योगिक प्रगति हुई, वैसे-वैसे खेलों के प्रति लोगों की रुचि बढ़ी। आज आलम यह है कि लाखों-करोड़ों लोग खेल से किसी न किसी रूप से जुड़े हुए हैं।

"जैसे-जैसे भारतीय समाज की स्थिति में पिछले दो दशकों में बेहतरीभरा बदलाव आ रहा है, खेलों के बारे में लोगों के नजरिए में भी बदलाव दिखने लगा है। खेल एक ऐसी वास्तविकता है जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

भारत का मध्यवर्गीय समाज अब खेलों और मनोरंजन का अधिक आनंद लेने लगा है। सप्ताहांत अब लंबे हो गए हैं और युवा पीढ़ी इन सप्ताहांतों में बाजारों और मॉल्स में घूमने-फिरने तथा वक्त काटने के अलावा कुछ और विकल्प की तलाश में भी है। अंतरराष्ट्रीय खेल प्रतियोगिताओं में दर्शकों की भारी भीड़ इसी बदलाव की ओर संकेत करती है। हाल के दिनों में मैराथन दौड़ जैसी प्रतियोगितओं में बड़ी संख्या में लोगों की भागीदारी बढ़ी है और इनमें सभी आयु वर्ग के लोग

शामिल हैं। विश्व कप फुटबॉल और इंग्लिश प्रीमियर लीग जैसे लोकप्रिय खेल स्पर्धाओं के सीधे टेलीविजन प्रसारण से लोगों की रूचि में और भी इजाफा हुआ है। शहरी जनसंख्या के एक बड़े तबके की आमदनी में वृद्धि से ऐसा होना अवश्यंभावी था। भारत की शहरी जनसंख्या 40 करोड़ के करीब पहुंच गई है और इतनी बड़ी संख्या के पसंद और नापसंद की अनदेखी नहीं की जा सकती।

क्रिकेट की इंडियन प्रीमियर लीग ने लोगों की इस दिलचस्पी को भुनाया। परंतु तमाम शहरों के लोग क्रिकेट के अलावा अन्य खेलों के महारथियों में भी अपना आदर्श तलाश रहे हैं। चक दे इंडिया, भाग मिल्खा भाग, मैरी कॉम और खेल विषयवस्तु वाली फिल्मों की सफलता से पता चलता है कि फिल्म उद्योग भी इस अवसर का लाभ उठाने से पीछे नहीं रहना चाहता।"

आज के समय में खेल एक करियर के रूप में उभर कर सामने आया है। खिलाड़ियों को भारत रत्न दिया जा रहा है। वे राज्य सभा के सदस्य बनाए जा रहे हैं। इससे साफ जाहिर है कि लोगों का नजरिया खेलों के प्रति बदला है। खेलों के प्रति यह जुनून दुनिया के हर हिस्से में मौजूद है। इसी जुनून और जिज्ञासा को शांत करने के लिए लगभग सभी दैनिक पत्रों में खेल के लिए अलग पृष्ठ दिया जाता है। आज किसी भी समाचार पत्र की कल्पना खेल पृष्ठ के बिना नहीं की जा सकती, यही नहीं खेल समाचार खेल पृष्ठ से प्रथम पृष्ठ तक भी पहुंच चुके हैं। "खेल टेंशन रिलीफ करने का भी काम करता है। अखबार के शुरू के पन्नों में ज्यादातर हार्ड स्टोरिज होती है। जब आप आखरी के पन्ने पर पढ़ते हैं कि सायना एक फिर नंबर एक पायदान पर पहुंची। तो वह शुरू के पन्नों की टेंशन खत्म हो जाती है।" कई खेल आधारित पत्रिकाएं भी प्रकाशित हो रही है। मनुष्य के आर्थिक, समाजिक, राजनीतिक, धार्मिक अथवा सांस्कृतिक जीवन पर जन-संचार का व्यापक प्रभाव पड़ता है। यदि कहा जाए कि मनुष्य के सामान्य ज्ञान का अधिकांश भाग 'जन-माध्यम' की देन है, तो अत्युक्ति नहीं होगी।

आज हमारे चारों तरफ खेल से जुड़ी इतनी घटनाएं हो रही हैं कि समाचार पत्रों के लिए खेल की खबरों की कमी नहीं है लेकिन समाचार पत्र के केंद्र में केवल कुछ खेल की खबरें ही रह रही हैं। "भारत के संदर्भ में क्रिकेट केवल एक खेल नहीं बल्कि अकेला खेल है।" इससे अन्य खेल और उससे जुड़े लोग उपेक्षा के शिकार हो रहे हैं। भारत के संदर्भ में क्रिकेट एक ऐसा ही खेल है जिसे प्रत्येक समाचार पत्र में प्राथमिकता दी जा रही हैं। खेल पृष्ठों में ज्यादातर स्थान इसी खेल से भरा

रहता है। इससे दूसरे खेल कहीं पीछे छूट जा रहे हैं। "मीडिया जिस खेल को ज्यादा स्थान देगा वह ऊपर जाएगा, नहीं तो नीचे जाएगा।" खेल का विकास बहुत हद कर मीडिया कवरेज पर निर्भर करता है।

31 जनवरी से 14 फरवरी तक 35वें राष्ट्रीय खेल हुए। इस दौरान सभी समाचार-पत्रों ने अपने खेल पृष्ठों पर इसकी खबर को स्थान दिया। लेकिन जितना क्रिकेट की किसी सीरीज को कवरेज दिया जाता है उतना इसकी कवरेज देखने को नहीं मिली। 2011 के बाद यह खेल केरल में हुए। इस दौरान दिल्ली से निकलने वाले दैनिक जागरण और दैनिक भास्कर समाचार-पत्र (मुद्रित) के खेल पृष्ठों का तुलनात्मक अध्ययन इस शोध में किया गया है। इन दोनों समाचार-पत्र को लेने का कारण यह है कि यह दोनों ही समचार-पत्रों की पाठक संख्या अन्य समाचार-पत्रों में सबसे ज्यादा है। दोनों पत्र देश के नंबर एक और दो पत्र हैं।

शोध के दौरान यह जानने का भी प्रयास किया गया है कि आखिर क्या वजहें रही जिसके कारण राष्ट्रीय खेल को कम स्थान मिला है या उम्मीद के मुताबिक वह कवरेज नहीं जुटा पाई। इसके साथ ही आम जनता का खेल की खबरों के प्रति क्या रवैया है, वह किस खेल की खबर पढ़ना चाहती है और मीडिया से वह किस तरह की रिपोर्टिंग की उम्मीद करती है। इन्ही सभी मुद्दों को लेकर यह लघु शोध किया गया है।

समस्या केवल यह नहीं है कि समाचार-पत्र क्रिकेट की ही खबरे ज्यादा क्यों छापतें है दूसरा सवाल है कि क्या लोग वास्तव में क्रिकेट की खबरें ज्यादा पढ़ना चाहते हैं? अगर पढ़ना चाहते हैं तो समाचार-पत्र ज्यादा क्रिकेट की खबरें देकर क्या गलती कर रहे हैं? तो क्या मीडिया का यही काम है कि जो लोग पढ़ना चाहे वहीं उसे पढ़ाया जाए या समाचार-पत्र की भी समाज के प्रति कोई जिम्मेदारी बनती है। मीडिया के जिम्मेदारी की बात करे तो उसका कार्य है कि वह वह समाज को वांछित चीजे दे न कि वह जो वह चाहती है।

लोगों की पसंद की सामग्री देना, अखबार की लोकप्रियता का आधार हो सकता है। लेकिन यह बात इतनी सरल नहीं है। लोगों की पसंद का तात्पर्य क्या है ? क्या अखबारों की भूमिका इस मामले में निर्दोष होती है ? ज्यादातर मामलों में यह निर्दोष नहीं होती। वह लोगों की पसंद के अनुसार

सामग्री नहीं देती बल्कि लोगों की पसंद का निर्माण करती है। वह ऐसी सामग्री देती है जो उन्हें भावात्मक रूप से उत्तेजित करे, उन्हें उन चीजों के प्रति ज्यादा आकृष्ट करे जिनका महत्व उनके जीवन में ज्यादा नहीं होना चाहिए।

इसमें एक पेंच और है कि समाचार-पत्र अपनी लागत से काफी कम कीमत पर बिकता है यानी उसका खर्च सीधे उसके सर्कुलेशन से नहीं आता। इसके दूसरे पक्ष यानी कि पाठक संख्या के आधार पर उसे मिल रहे विज्ञापन से समाचार-पत्र चल रहे हैं। अब अगर किसी को अपना समाचार-पत्र चलाने के लिए जो पाठक चाह रहा है वह उसे दे रहा है तो इसमें गलत क्या है ? इन सभी सवालों को भी इस लघु शोध में छूने की कोशिश की गई है।

जिस मिशन के साथ मीडिया की शुरुआत हुई थी वह आज के समय नहीं रही। अब यह व्यवसाय हो गई है। लेकिन अगर यह पूरी तरह से व्यवसाय हो गई है तो इस पर अन्य व्यवसायों की तरह नियम क्यों लागू नहीं होते। जब भी उस पर नियम की बात की जाती है तो वह स्व नियमन की बात करती है। क्योंकि वह इसे अभिव्यक्ति की आजादी पर हमला कहती है। यानी उसे अपनी जिम्मेदारी खुद समझनी होगी। अगर वह ऐसा नहीं करता तो उसके चौथे स्तंभ होनें पर सवाल उठेंगे। अभी भी समाज में मीडिया को लेकर एक अलग नजरिया रखा जाता है। उससे उम्मीद की जाती है कि वह समाज और सरकार को सही रास्ता दिखाएगा। अगर यह शोध इस बात की चर्चा शुरू कराने में सफल रहा कि समाचार-पत्रों को लोकतांत्रिक तरीका अपनाकर अन्य खेलों को भी स्थान देना चाहिए तो यह इस शोध की सफलता ही होगी।